भारतीय परम्परा में अध्यात्म और संगीत

डॉ. रेखा रानी
एसोसिएट प्रोफेसर,
एस.एस. खन्ना महिला महाविद्यालय,
इलाहाबाद।

सारांश

मनुष्य का स्वभाव ही अध्यात्म है। प्रत्येक शरीर में परमात्मा अर्थात् पारब्रम्ह का अंश विद्यमान है। यही कारण है कि जब मनुष्य को आत्मा का ज्ञान होता है। सांसारिक राग द्वेष से मुक्त होकर ऊपर उठकर अन्तर्मन में सत्य के करीब आता है तो दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है। अध्यात्म में ही ज्ञान, कर्म और उपासना का विशेष स्थान है। इसीलिये आध्यात्मिकता का मूल आधार एकाग्रता को माना गया है। एकाग्रता के होते ही आत्मा में अतीन्द्रिय सुख का संचार होने लगता है इसीलिये संगीत के स्वर मन को एकाग्र करके इतना अधिक तल्लीन, तन्मय और स्थिर कर देते है कि स्वर साधना करने से ही संगीतकार की एकाग्रता बन जाती हैं, जिससे संगीतकार की आध्यात्मिकता का मार्ग प्रशस्त होता है।

भारतीय संगीत की आधरशिला आध्यात्मिक है। भारत धर्म प्रधान देश है। भारतीय विचारधारा सदा से आदर्श की भावभूमि पर प्रवाहित होती रही है। जिसका प्रमुख उददेश्य लोक कल्याण है। यहाँ की धरती में राम , कृष्ण बुद्ध , रामकृष्ण परमहंस , विवेकानन्द , महावीर की आत्मा कण – कण में समाहित है। सत्य , अहिंसा ब्रम्हचर्य , अस्तेय और अपरिग्रह इन पंच महाव्रतों को इस देश के निवासी युगों – युगों से आत्मसात करते आ रहे है। भारतीय संगीत सदा से धर्म प्रधान रहा है। यहाँ की समस्त कलाएं , दर्शन , चिंतन आदि इसी ओर उन्मुख रही। यही वजह है कि धर्म से संगीत का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। धार्मिक दृष्टिकोण के अनुसार संगीत की उत्पत्ति वेदों के निर्माता ब्रम्हा द्वारा , ब्रम्हा ने शिव, शिव ने सरस्वती, सरस्वती से नारद को और नारद से यह कला स्वर्ग के गन्धर्व व अप्सराओ को प्राप्त हुई। इस तरह से संगीत के विकास का क्रम आगे बढा। नाद को उपासना का माध्यम माना गया है। ब्रम्हाण्ड की प्रत्येक चराचर वस्तु में नाद व्याप्त है ,नाद ब्रम्ह से ही संगीत की उत्पत्ति हुई है। संगीत के महत्व को बताते हुए दामोदर पण्डित कहते है –

धर्मार्थकाम मोक्षाणा मिदमेवेक साधनम्।
नाद विद्या परांलब्धवा सरस्वतयाः प्रसादतः ।।(दामोदर पण्डित , संगीत दर्पण अ–1 श्लोक 21)

अर्थात् धर्म अर्थ , काम और मोक्ष की प्राप्ति का साधन संगीत को माना गया है। नाद परमश्रेष्ठ है इसे सरस्वती देवी की कृपा से ही प्राप्त किया जा सकता है। संगीत का आधारभूत तत्व ही नाद है। नाद को ही चैतन्य , आनन्दात्मक ब्रम्हा इत्यादि बताते हुए नाद के विषय मे नारद ने पद्मपुराण में कहा है –

नाहं वसामि बैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारदः।।(अहोबल , संगीत पारिजात , पृष्ठ श्लोक 15)

संगीत रत्नाकर मे शारर्ङ्गदेव ने नाद के विषय में कहा है कि नाद से वर्ण , वर्ण से शब्द , शब्द से वाक्य और वाक्यों से इस जगत के व्यवहार व्यंजित होते है। अर्थात् सारा जगत नाद के आधीन है। जीवन में चेतना का प्रतीक भी स्पंदन रूप में नाद है, सम्पूर्ण सृष्टि ही नादात्मक है। योगियों और महर्षियों ने इसे निर्गुण ब्रम्हा का सगुण रूप कहा है। इसकी अनुभूति ऊँ की साधना से प्रमाणित होती हैं।(पं0 ओमकार नाथ ठाकुर , प्रणवभारती पृष्ठ 7 भारतीय)

भारतीय परम्परानुसार संगीत का सम्बन्ध वेदों से माना गया है। वेद का बीज मंत्र है ''ओम'' ओम के तीनों अक्षर – अ , उ और म, तीन ईश्वरीय शक्तियों के द्योतक है –

अ = ब्रम्हा शक्ति का द्योतक है।

उ = विष्णु शक्ति का द्योतक है।
म = महेश की शक्ति का द्योतक है।
इन शक्तियों को त्रिमूर्ति (त्रिगुणात्मक) भी कहते हैं। संगीत के सप्त स्वर षड्ज – ऋषभ ओंकार के ही अन्तर्विभाग है। प्राचीन महर्षियों की अवस्त्र एवं अनन्त साधना के फलस्वरूप भक्ति संगीत का प्राचीनतम रूप ऋग्वेद तथा सामवेद। 'सामवेद' ऋग्वेद का गेय रूपान्तर है। सामदेव के सभी मन्त्र ऋग्वेद से ही संग्रहीत है। अन्तर सिर्फ इतना है कि जब ऋग्वेद के मन्त्र स्वर , आलाप सहित गाये जाते हैं तो साम बन जाते है।(डा0 कुन्दन लाल शर्मा , यजुर्वेद तथा सामवेद संहिताएँ पृ0 337)
वैदिक वाङ्मय में गीतवाद्य और नृत्य तीनों का उल्लेख उपलब्ध है। ऋग्वेद में गीत के लिये गीर , गातु , गाथा , गायत्र गीति तथा साम आदि शब्दों का प्रयोग उपलब्ध होता है। ऋग्वेद की ऋचाएँ स्वरबद्ध होने पर स्त्रोत कहलाती है। यजुर्वेद में सामगान का महत्वपूर्ण स्थान था। यज्ञकार्य के विस्तार हेतु इसका प्रयोग आवश्यक था। यजुर्वेद में मुख्यतः वीणा , वाण , तुणव , दुन्दभि , भूमि दुन्दुभि , शंख तथा तलव इत्यादि वाद्यों का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद में मुख्यतः दुन्दुभि व भूमि दुन्दुभि वाद्यों का विशेष उल्लेख है। अथर्ववेद का एक विशिष्ट स्थान है अथर्व संज्ञा उन मंत्रों के लिए है जो सुख मूलक और मंगलकारी है। वाद्यों में अघाट , कर्करी तथा दुन्दुभि का उल्लेख होता है।

श्री कृष्ण ने गीता मे कहा है कि ''वेदों में सामवेद मैं ही हूँ। ऐश्वर्य के समान संगीत का सौन्दर्य भी उक्त व असीम है। सामवेद ऋग्वेद का रूपान्तर है। सामवेद के सभी मंत्र ऋग्वेद से लिये गये है। अन्तर यह है कि ऋग्वेद का पाठ – काव्य गायन के समान और सामवेद का गायन अलापों से युक्त शास्त्रीय संगीत के समान रहा है। संगीत का मूल स्त्रोत सामवेद है। सामवेद एक ऐसा वेद है जिसके मंत्र यज्ञों में देवताओं की स्तुति करते पाये जाते थे। ऋषियों के तपोवन में सामगान के स्वर सुनाई देने लगे। सामवेद पूर्णतया संगीतमय है। जिसमें पहले तीन स्वर उदात्त अनुदात्त व स्वरित से गान होता था। सामवेद में समस्त छंद नये थे। सामगान मे तीन भाग होते थे। प्रस्ताव , प्रतिहार और उद्गीत। उनके तीन उपांग – हिंकार , उपद्रव व निधान थे। सामवेद का संगीत की दृष्टि से विषेष स्थान है यही वह ग्रन्थ है जिसके रूप में भारतीय संगीत के अनादि स्त्रोत का दृश्य सामने प्रथम बार आता है। सामवेद को ही अन्य वेदों के यथार्थ ज्ञान की कुंजी मानी है।
भगवत पुराण में कहा गया है कि –

श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दन , दास्य सख्यमात्म निवेदनम्।।
इति पुंसर्पिता विष्णौ भक्तिचेतन्मवलक्षणा। (श्रीमद्भागवत पुराण , 7.5 , पृष्ठ 23 – 24)

जब आराधक अपने इष्ट देव की आराधना विभिन्न रूपों में करता है जैसे – श्रवण , कीर्तन , स्मरण , आत्मनिवेदन। इन्हे नवधा भक्ति भी कह सकते हैं। भक्त भी भक्ति करते समय जब तक मन से भटकते रहते हैं , उन्हे मजा नहीं आता । भले ही वे बाहय रूप से क्रिया कांड करते रहतें हैं। परंतु आत्मतुष्टि नही पाते हैं। जब परमात्मा से लगन लग जाती है , परम याद – प्यार में अनन्यभाव समाहित हो जाता है। तब ही हमें अतीन्द्रिय आनंद और ईश्वरीय सुख का अनुभव होता है फिर दुनिया के सुख फीके लगने लगते हैं। इसलिये भक्ति , नौधा भक्ति गाई हुई है। भक्त अपने अस्तित्व को पूर्णतया परमात्मा के प्रति समर्पित कर देता है तभी उसे परमात्मा का साक्षात्कार होता है तब उनके आराध्य उनकी मनोकामना पूर्ण करते हैं। प्रभुस्मृति के समय दैहिक इहलौकिक सुधबुध से परे होकर परमरस में हम जब तक रम नहीं जाते , तब तक उच्चस्तरीय साधना की स्थिति नहीं बनती है। साधना की उत्कृष्ता में ही मौलाई मस्ती का , इलाही सुख का अनुभव होता है।(ज्ञानमृत मासिक1 जुलाई 2019, पृष्ठ 14)

प्राचीन काल से ही संगीत जन-मानस के निकट था। यही कारण है कि संगीत लौकिक हो या आध्यात्मिक भक्ति भावना से ओत प्रोत था। इसका प्रयोग ईश्वरोपासना हेतु किया जाता था। चाहे नृत्य द्वारा भगवान शिव को आकर्षित करना हो या फिर वृन्दावन में ब्रज गोपियों का श्री कृष्ण के साथ रासलीला करना। रामायण और महाभारत काल में भी संगीत ने योग का रूप ले लिया था। ज्ञानी लोग संगीत साधना का योग के रूप में करते थे। गीता के समय से भक्ति मार्ग को स्वतंत्र स्वरूप प्राप्त हुआ। श्री कृष्ण ने स्वयं को प्राप्त करने व मोक्ष प्राप्ति का सरलतम उपाय भक्ति संकीर्तन को बताया। उस समय भक्ति व कीर्तन का महत्व था। विष्णु पुराण में कहा गया है कि –

''जिस प्रकार अग्नि से स्वर्णादि धातुओं के मल का नाश होता है , उसी प्रकार भक्तिपूर्वक किया हुआ भगवत कीर्तन सभी पातकों का नाश करने का उत्तम साधन है।''

पुराणों के अनुसार –

''विलज्जते उद्गायति नृप्यते च मदुभक्ति युक्तों भुवनं पुनति''

अर्थात् जो लज्जा छोडकर उच्च स्वरों मे गान करता है, नृत्य करने लगता है, ऐसा भक्त समस्त लोकों को पवित्र करता है। प्रत्येक युग में संगीत किसी न किसी रूप में आध्यात्मिकता से सम्बद्ध रहा है। जन मानस मे भगवद् भक्ति के लिये भजन , कीर्तन आरती , सरल स्तुति, वंदना इत्यादि अनेक गीतों का प्रचलन था। ये रचनाएं लोक धुनों के अनुसार, क्षेत्रों के अनुसार प्रान्तों के अनुसार सरल , सहज व सर्वग्राही थी। चूँकि समाज आध्यात्मिकता से जुडे होने के कारण उनका मानसिक सोच व चिन्तन निम्न नही होने पाया। मध्यकाल में मुस्लिम शासकों का प्रभुत्व था। आक्रमणकारियों के प्रभाव से जनता जनार्दन आशंकित भयभीत रहती थी। उस दौरान महान सन्तों ने सांगीतिक रचनाओं के द्वारा जन मानस को संतुष्ट किया तथा आध्यात्म का मार्ग दिखाया।

''भारत का इतिहास अनुभव सिद्ध भक्तों , संतों , योगियों दिव्य चरित्रों से भरा हुआ है जैसे कि कबीर , सूरदास , रैदास , रहीम , तुलसीदास , मीराबाई , नरसिंह मेहता , तुकाराम , ज्ञानदेव , अक्क महादेवी , तिरूवल्लूवर आदि अपने इष्ट से एकरूप हो गये। जब एक्यभाव बना तब आनंद में नाच उठे। भावातिरेक अवस्था मे ही अनहद आनंद को प्राप्त हुये। उस समय उन्हे परिवार व समाज की तरफ से मिलने वाली प्रताडनायें भी प्रसाद के रूप अनुभव हुये। विरोध और अत्याचार की परिस्थितयों में भी हारे नहीं , अपने लक्ष्य के प्रति तीव्र गति से अग्रसर हुये। आंतरिक विचारों का भावों का भावनाओं का तादात्म्य जब सिर्फ परमात्मा से सध जाता है तब स्वतः ही हमारे मे शांति , सुख , प्रेम , आनंद और पवित्रता आदि गुण समाहित हो जाते है। जिससे सहनशीलता , धीरजता , निर्भयता , निश्चिंतता स्थिरता आदि की धारणा हो जाती है। भक्ति के आदिकाल में हुये ऐसे ऋषि मुनियों ने जब परमात्मा से अद्वैत रचाया तब ही उनमे सृजनशीलता के रचनात्मकता के नवीन विचार उत्पन्न हुये। नये नये विचार दुनिया के आगे प्रस्तुत किये। सूर , मीरा , गुरूनानक, स्वामी हरिदास , नंददास ने झांझ इकतारा , करताल लेकर प्रभु भक्ति मे तल्लीन होकर प्रभु भक्ति से ओत प्रोत गीत गाये। सूर पदों से और मीरा नृत्य से कृष्ण को रिझाते थे। सूरदास उच्च कोटि के कवि एवं गायक थे। सूर , मीरा , तुलसी आदि के पास अंतर्दृष्टि थी। जिसके द्वारा उन्होने परमात्मा के दर्शन किए और जनता को कराए। चाहे सगुण या निर्गण भक्त , ज्ञानमार्गीया कीर्तन मार्गी सभी ने ईश्वराधना का माध्यम संगीत को माना है।

भारतीय संगीत अध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में पला। भक्तिकाल में तो मंदिरों में ही केवल इसका एक मात्र स्थान था , इसलिये वाग्येकारों मे देव – ध्यान , छंद ध्यान और ताल ध्यान के साथ राग ध्यानों की परम्परा चल पड़ी। लगभग सातवीं शताब्दी में मतंग के समय तांत्रिक भाव की लहर उठी। जिसमें बिना ध्यान के कोई गति नहीं थी। इसी तंत्रिकता के प्रभाव में मतंग ने तांत्रिक राग ध्यान लिखे, ऐसा महाराणा कुंभा के ग्रंथ संगीतराज से अवगत होता है। शास्त्रकारों का विश्वास है कि हर राग के दो स्वरूप हैं नादमयी एवं भावमयी। नादमयी रूप उसका शरीर है और भावमयी शरीर उस रूप का अधिष्ठात्री देवता अथवा उसकी आत्मा है। देवमय रूप के आवाहन के

लिये सोमनाथ ने अपने ग्रंथ 'राग विबोध' के पंचम विवेक मे राग के नादमयी एवं देवमयी दो स्वरूप इस प्रकार स्वीकार किये है –

''सुस्वर वर्ण विषेष रूपं रागस्य बोधकं द्वेघा।
नादात्मकं च देवमयं तत्क्रमतो नेक्रमेकंतु ।।

रागों के नादमय रूपों के वर्णन के पश्चात उन्होने उनके पुनः देवमय रूपों का भी वर्णन किया है जो कि इस प्रकार से है –

उक्त रूपमनेकं तद्रागस्य नादमयमेवम्
अथदेवतामयमिह क्रमतः कथयेत दैकैकम् ।

अर्थात् रस ही राग का देवमय रूप है। राग में रस तत्व ही अनुभूति मात्र है , जिसका कोई आकार नही। इसी प्रकार भगवद् तत्व भी रस की ही तरह निराकार होते हुये भी आनन्दमय है। मन को समाहित करने के लिये जिस प्रकार स्थूल आधार की आवश्यकता पडने पर मूर्ति पूजा की जरूरत पडी , उसी प्रकार राग रस मे डूबने के लिये राग ध्यानों के सहारे राग के देवमय रूपों को एक निश्चित रूप दिया गया। गीता मे कहा गया है कि –

''स्वभावों अध्यात्मुच्चते''

मनुष्य का स्वभाव ही अध्यात्म है। प्रत्येक शरीर में परमात्मा अर्थात् पारब्रम्ह का अंश विद्यमान है। यही कारण है कि जब मनुष्य को आत्मा का ज्ञान होता है। सांसारिक राग द्वेश से मुक्त होकर ऊपर उठकर अन्तर्मन में सत्य के करीब आता है तो दिव्य आनन्द की अनुभूति होती है। अध्यात्म में ही ज्ञान, कर्म और उपासना का विशेष स्थान है। अध्यात्मिकता का मूल एकाग्रता में है। संगीत के स्वर मन को एकाग्र करके इतना अधिक तल्लीन , तन्मय और स्थिर कर देते है कि स्वर साधना से ही संगीतकार की एकाग्रता होती जिससे संगीतकार की आध्यात्मिकता का मार्ग प्रशस्त होता है। एकाग्रता के होते ही आत्मा में अतीन्द्रिय सुख का संचार होता है। यही भगवद् भक्ति का मूल आधार है। जो इस लोक मे दुर्लभ है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में – ''जिन पावन चरणों तक में प्राण और मन देकर भी कदापि नहीं पहुँच सकता , गान के माध्यम से उसी के चरणों तक पहुँच गया।''

सन्दर्भ ग्रंथः–

1) दामोदर पंडित , ''संगीत दर्पण'' अ –1 श्लोक 21
2) अहोबल ''संगीत परिजात'' , पृष्ठ श्लोक 15
3) पंडित ओमकार नाथ ठाकुर , ''प्रणव भारती'' पृष्ठ 7
4) डॉ0 कुन्दन लाल शर्मा , यजुर्वेद तथा सामवेद संहिताएँ पृष्ठ 337
5) श्रीमद्भागवत पुराण , 1.5 , पृ0 23 , 24
6) ज्ञानामृत मासिक पत्रिका जुलाई पृ0 14
7) संगीत और संवाद – अशोक कुमार पृ0 179
8) भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विश्लेषण– प्रो0 स्वतन्त्र शर्मा पृ0 21 , 22 , 23
9) निबन्ध संगीत लक्ष्मी नारायण गर्ग – 305
10) संगीतायन – सीमा जौहरी – पृ0 19